ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 216-219

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

जैन दर्शन एवं बौद्ध दर्शन में मुक्ति मार्ग : एक अनुशीलन

अमृत आनन्द सिन्हा

शोध अध्येता– प्रचीन भारत एवं एशियन स्टडी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार) भारत

Received-27.11.2022, Revised-04.12.2022, Accepted-10.12.2022 E-mail: amritanandballia@gmail.com

सारांशः ***जैन एवं बौद्ध दोनों परम्पराएं वेदों को प्रमाण नहीं मानती। दोनों श्रमण–संस्कृति की शाखाएं हैं। जाति की अपेक्षा व्यक्ति की पूजा दोनों को मान्य है, किन्तु व्यक्ति की पूजा का आधार गुण एवं कर्म को माना गया है। जैन एवं बौद्ध दोनों धर्मों में यह माना गया है कि मानव की ऐसी वृत्तियाँ जो उत्थान के स्थान पर पतन करती हैं, शांति के बजाय अशांति उत्पन्न करती हैं, उत्कर्ष की जगह अपकर्ष लाती हैं– वे जीवन को असफल बनाती हैं। ऐसी अकुशल एवं कुत्सित वृत्तियों को शांत करने से ही आध्यात्मिक विकास हो सकता है। मानव के आध्यात्मिक विकास के विभिन्न दोनों धर्मों में मार्ग की अनुशंसा हुई है, जिन्हें मुक्ति मार्ग के नाम से जाना गया है। वर्तमान सामाजिक परिवेश में उत्कृष्ट मानव मूल्यों का ह्रास तेजी से होता जा रहा है। यह भी सत्य है कि महावीर एवं बुद्ध के समय भी समाज का वातावरण विषाक्त, अंधकार व अज्ञान से भरा था। धूर्त लोग नासमझ व गरीब व्यक्तियों को मिथ्या ज्ञान, कर्म व भावना के जाल में उलझाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे किन्तु आज भी व्यक्ति इतने संसाधनों एवं उपलब्ध शिक्षा संस्थानों के बावजूद भ्रामक व कष्टप्रद जीवन व्यतीत करता रहे तो यह कहीं से भी मानवहित में एवं विकास का सूचक नहीं है। डॉ0 राधाकृष्णन ने मानव जाति के लिए सर्वमुक्ति की बात कही थी, श्री अरविन्द ने मानव को अतिमानस के स्तर पर स्थापित करना चाहा था– क्या मानव समाज एवं मानव जीवन उस दिशा में बढ़ रहा है? नहीं। मानव की गति उत्कृष्ट की ओर होना चाहिए किन्तु मानव भौतिकतावाद में अपने को जकड़कर शरीर के तल पर आ गिरा है। यह दुर्दशा भरी स्थिति कहीं से भी भावी संसार के लिए उचित नहीं है। व्यक्ति 'मैं' और 'मेरा' के भाव से ऊपर नहीं बल्कि नीचे की ओर चला आया है। इन परिस्थितियों में जैन एवं बौद्ध दर्शन का मुक्ति मार्ग मानव को उच्चतर आध्यात्मिकता का जीवन देने में पूर्णतः सक्षम है। दोनों धर्मों में नैतिकता एवं आचार व्यवहार पर अत्यधिक बल दिया गया है। मौलिक रूप से अनीश्वरवादी होने के बावजूद दोनों धर्मों में मानववाद को ही केन्द्र में रखा गया है। सन्यासी या गृहस्थ कोई भी जैन एवं बौद्ध के मार्ग पर चलकर अपने आध्यात्मिक उत्कर्ष को पा सकता है।***

कुंजीभूत शब्द– श्रमण–संस्कृति, अशांति, अपकर्ष, अकुशल, आध्यात्मिक विकास, अनुशंसा, सामाजिक परिवेश, उत्कृष्ट।

प्राच्य धर्मों के अंतर्गत बौद्ध तथा जैन दो ऐसे अनीष्वरवादी धर्म हैं, जिन्होंने मानव–मुक्ति के सम्बन्ध में अपनी विषिश्ट अवधारणाएं प्रस्तुत की है। ''निर्वाण'' अथवा ''कैवल्य'' इनके अनुसार ईष्वर–प्राप्ति की नहीं, बल्कि आत्म प्राप्ति की अवस्था है। आत्म प्राप्ति की इस अवस्था में मैं तथा मेरा का भाव नष्ट हो जाता है और मानव एक सार्वभौमता के अन्तर्गत पूर्ण शांति एवं आनन्द को प्राप्त करता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए इन दोनों ही धर्मों में मार्ग विशेष की व्यवस्था है, जिसका अनुसरण कर मानव अपने इस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

प्राच्य–धर्म की परम्परा में जैन धर्म भी मोक्ष की प्राप्ति को मानव–जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार करता है। मोक्ष बंधन के प्रतिकूल है और इन दोनों का सम्बन्ध जीव से है इसके अनुसार बंधन के दुःख का भोक्ता जीव अपने वास्तविक स्वरूप के अन्दर एक चेतन द्रव्य, स्वभावतः पूर्ण एवं अनंत है। शरीर धारण करने के बाद इसके समक्ष बाधाएं उत्पन्न होती हैं जैन धर्म मानता है शरीर का निर्माण पुद्गलों से होता है।

अतः पुद्गल और जीव का जब संयोग होता है तो बंधन की उत्पत्ति होती है। और यही कारण है कि यह ध र्म–पुद्गल तथा जीव के परस्पर प्रयोग को मोक्ष की संज्ञा देता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैनों के अनुसार मोक्ष का अर्थ षरीर का नाश नहीं है बल्कि मोक्ष तो सदेह अवस्था में भी प्राप्त हो सकती है। यहाँ इनकी मान्यता है कि नए पुद्गलों का आश्रव बंद हो जाने पर तथा जीव से पहले प्रवेष पाए पुद्गलों के जीर्ण हो जाने से मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है। जैनियों ने इसे क्रमशः संवर तथा निर्जर की संज्ञा दी है।

जैन धर्म में मोक्ष प्राप्ति के लिए तीन मार्ग निर्धारित किए गए हैं–

1. सम्यक दर्शन – तीर्थंकरों में आस्था
2. सम्यक ज्ञान – सिद्धान्तों का समुचित ज्ञान तथा
3. सम्यक चरित्र – उत्तम चरित्र

जैन धर्म में इन्हें 'त्रिरत्न' कहा गया है। तत्वार्थधिगम सूत्र में उमास्वामी का प्रथम सूत्र वाक्य इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– **''सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चरित्राणि मोक्ष मार्गः''**

सम्यक् दर्शन– सत्य के प्रति श्रद्धा की भावना सम्यक् दर्शन है। जैन दर्शन इसे कुछ लोगों में जन्मजात तथा कुछ

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

लोगों में विद्योपार्जन एवं अभ्यास द्वारा अर्जित मानता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि यहाँ श्रद्धा का अर्थ अंध श्रद्धा नही है, बल्कि इसका आधार बौद्धिकता है। अतः सम्यक् दर्शन का अर्थ बौद्धिक विश्वास है। तीर्थंकर मणीभद्र ने स्पष्टतः इस श्रद्धा की युक्तिपूर्णता को स्वीकार किया है।

सम्यक् ज्ञान– जैन धर्म जीव के बंधन का मूल कारण क्रोध, मोह, लोभ तथा माया को स्वीकार करता है। इन कुप्रवृत्तियों का एकमात्र कारण अज्ञान है। अज्ञान का पूर्ण नाश केवल ज्ञान द्वारा ही संभव है। अतः मोक्ष की प्राप्ति में सम्यक् ज्ञान महत्वपूर्ण है। यहाँ सम्यक् ज्ञान का अर्थ उस ज्ञान से है जिसके माध्यम से जीव तथा अजीव के मूल तत्वों का पूर्ण ज्ञान संभव होता है। सम्यक् ज्ञान संशय तथा दोषों से परे है।

सम्यक चरित्र– मोक्ष प्राप्ति के एक प्रमुख अंग के रूप में सम्यक चरित्र की व्याख्या में कहा गया है– "अहित कार्यों का वर्जन तथा हित कार्यों का आचरण ही सम्यक चरित्र है।" यहाँ वासना, इन्द्रिय, मन, वचन तथा कर्म को संयमित करना पड़ता है। इसका सुपरिणाम यह होता है कि नए कर्मों का संचय बंद हो जाता है तथा पुराने कर्मों का भी नाश हो जाता है, जिसके फलस्वरूप उन पुदगलों का भी नाश हो जाता है, जिसके कारण जीव बंधन में पड़ता है।

जैन दर्शन में सम्यक चरित्र पर बहुत जोर दिया गया है इसके अंतर्गत समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह, धर्मानुक्षा तथा पंचमहाव्रत इत्यादि आते हैं–

समितियाँ– वे आवश्यक नियम, जिनका पालन जीवन के हर पहलू में आवश्यक है– जैन धर्म में समीतियों के नाम से जाना जाता है।

गुप्ति– मन शरीर एवं वचन पर नियंत्रण रखने को जैन धर्म में गुप्ति की संज्ञा दी गयी है। यहाँ मनोगुप्ति, कायगुप्ति एवं वाकगुप्ति, के रूप में तीन गुप्तियों को स्वीकार किया गया है।

धर्म– मोक्ष प्राप्ति के अन्तर्गत सम्यक–चरित्र में धर्म पालन पर भी बल दिया गया है। यहाँ इन धर्मों की संख्या दस मानी गयी है।

अनुप्रेक्षा– जीव तथा अजीव की यथार्थता पर विचार के लिए प्रस्तुत बारह भावों को जैन धर्म में अनुप्रेक्षा कहा गया है।

परिषह– भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी इत्यादि दुःखों पर कठोर परिश्रम से विजय पाने के लिए किए गये तप को इस ध र्म में परिषह कहा जाता है। जैन
धर्म 33 परिषह की बात करता है।

धर्मानुक्षा– धर्म के रास्ते पर चलकर अपने में शांति एवं स्थिरता लाने की चेष्टा को यहाँ धर्मानुक्षा कहा गया है।

पंचमहाव्रत– मोक्ष प्राप्ति के संदर्भ में सम्यक चरित्र के अन्तर्गत पंचमहाव्रत के आचरण के पालन पर जैन धर्म में बहुत जोर दिया गया है। इस आचरण के पालन पर उपनिषदों तथा बौद्धों ने भी बहुत जोर दिया है अतः इनकी व्याख्या अपेक्षित प्रतीत होती हैं–

अहिंसा– अहिंसा पंचमहाव्रत का प्रथम व्रत है। इस धर्म में अहिंसा के सम्बन्ध में एक व्यापक विचार प्रस्तुत किया गया है। इस विचार के अन्तर्गत केवल जीवों की हत्या न करने को ही अहिंसा नहीं कहा गया है, बल्कि इसके अंदर जीवों को किसी प्रकार का कष्ट तक पहुँचाना वर्जित है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि जैन धर्म अहिंसा के व्रत पालन में मन, वचन तथा कर्म तीनों से निष्ठापूर्वक आचरण पर जोर दिया गया है। इसके अनुसार अहिंसा धर्म में सभी प्राणियों को जीने का समान अधिकार है तथा इसमें सामाजिक कल्याण की भावना छिपी है।

सत्य– जैन का मानना है कि असत्य मनुष्य को नीचे गिराता है। विभिन्न आसक्तियों के कारण हम वचन तथा कर्म से असत्य का मार्ग अपनाते हैं और यह असत्य हमें बंधन में डालता है। ऐसी स्थिति में बंधन से मुक्ति पाने तथा अपने को सुखी एवं उन्नत बनाने के लिए असत्य का त्याग एवं सत्य का पालन अनिवार्य होता है। यहाँ वैसी बात बोलने की भी मनाही है जो कटु लगे।

सत्य एवं प्रिय भाषण मनुष्य को अहिंसा के मार्ग पर ले जाता है। प्रिय बोलना आवश्यक है किन्तु असत्य को प्रिय बनाकर नहीं बोलना चाहिए किसी के लिए बुरा सोचना, निंदा करना या गुप्त बातों को प्रकट करना, विश्वास तोड़ना, मिथ्या उपदेश देना वर्जित है।

अस्तेय– पंचमहाव्रत का तीसरा व्रत अस्तेय है। इसका अर्थ है– चौर्य वृत्ति का त्याग। किसी की सम्पत्ति की चोरी करना उसे कष्ट देना है। उस व्यक्ति का विकास चोरी के परिणामस्वरूप बाधित हो जाता है– अतः यह अधर्म है। जैन धर्म में सम्पत्ति को बाह्य जीवन माना गया है। अतः किसी की सम्पत्ति चुराना उसकी हत्या के समान है। चोरी करना, चोरी के लिए प्रेरित करना, चोरी का समान खरीदना, नाप–तौल में बेईमानी करना, अधिक मूल्य वसूलना, इत्यादि मुक्ति मार्ग के साधकों के

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

लिए पूर्णतः निषिद्ध है।

अपरिग्रह– 'अपरिग्रह' का अर्थ है– विषयासक्ति का त्याग। किसी भी पदार्थ के प्रति आसक्ति का त्याग करना अर्थात् संसार के समस्त विषयों में सच्चा वैराग्य ही अपरिग्रह है। वस्तुतः मोक्ष के साधक को उतना ही वस्तु का उपभोग करना चाहिए जितना जीवन को कायम रखने के लिए जरूरी हो।

ब्रह्मचर्य– पूर्णतः नैतिक जीवन व्यतीत करना एवं समस्त इच्छाओं से परे हो जाने का नाम ही ब्रह्मचर्य है। इस व्रत के पालन में साधक को अतिशय सावधानी बरतने की जरूरत होती है क्योंकि यहाँ अपने सभी इन्द्रियों को वश में रखना होता है।

निब्बानं परमं सुखम्।

निर्वाण अस्तित्व के नाश की अवस्था भी नहीं है बल्कि जीवन में प्राप्त हो सकने वाली परम व चरम स्थिति है। बौद्ध दर्शन में निर्वाण को ईश्वरीय देन या कृपा नहीं माना गया है। मनुष्य स्वयं अपने दुःखों व
बंधन का कारण है। मनुष्य को अपने प्रयत्नों से मुक्ति पाना होगा। राग, द्वेष, वासनाएं, तृष्णा, अज्ञान आदि पर विजय प्राप्त कर व्यक्ति निर्वाण को उपलब्ध होता है। निर्वाण का अर्थ जीवन का अंत मात्र नहीं है। व्यक्ति इसी जीवन में भी निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। मृत्यु के बाद निर्वाण की प्राप्ति को परिनिर्वाण की अवस्था कहा गया है। नागसेन ने निर्वाण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि निर्वाण समुद्र की तरह गहरा, पर्वत की तरह ऊँचा और मधु की तरह मधुर है। आशय यह है कि निर्वाण अवर्णनीय है।

कहै कबीर गूंगे गुड़ खाया का रसना का करै बड़ाई। शरीर के रहते निर्वाण प्राप्त करने वाला 'अर्हत' कहलाता है। अब उसके सभी कार्य अनासक्त भाव से होते हैं जो कर्मफल उत्पन्न नहीं करते। इस तरह पुनर्जन्म की संभावना समाप्त हो जाती है और व्यक्ति जन्म–मरण के चक्र से मुक्त हो परमगति को प्राप्त करता है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि– निर्वाण अकर्मण्यता की अवस्था नहीं है, निर्वाण को प्राप्त करने के बाद कर्मों से कर्मफल की उत्पत्ति नहीं होती। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति के कर्म भूँजे हुए बीज के समान होते हैं। वस्तुतः यह गीता के निष्काम कर्म के समान ही है। निर्वाण की इस अवस्था को ध्यान में रखते हुए इस
धर्म में इसकी प्राप्ति के लिए एक विशिष्ट मार्ग की व्यवस्था हुई है जिसमें मन, विचार तथा क्रिया–तीनों पक्षों को समान रूप से स्थान मिला है। इस मार्ग की आठ कड़ियाँ हैं और यही कारण है कि इसे "अष्टांगिक मार्ग" की संज्ञा दी गयी है। अष्टांगिक मार्ग की आठों कड़ियों को निम्नतः स्पष्ट किया जा सकता है–

सम्यक् दृष्टि– आर्य सत्यों का तत्व–ज्ञान तथा मन एवं वाणी और शरीर से होने वाले अच्छे बुरे कर्मों का ज्ञान सम्यक् दृष्टि है। यह मोक्ष प्राप्ति की दिशा में प्रथम सोपान तथा अष्टांगिक मार्ग की पहली कड़ी है। वस्तुतः बुद्ध का विचार था कि संसार तथा आत्मा के प्रति हमारे मिथ्या ज्ञान का एक मात्र कारणा अविद्या है। अविद्या ही हमारे समस्त दुःखों का मूल कारण है, इसी के कारण मनुष्य अनित्य, दुःखद तथा अनात्म वस्तु को नित्य, सुखद तथा आत्म रूप समझने की भूल कर बैठता है। अतः इस दृष्टि को त्यागकर वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर ध्यान रखना ही सम्यक् दृष्टि है।

सम्यक संकल्प– आर्य सत्यों को स्वीकार कर तथा दृढ़ निश्चिय होकर सत्य एवं अहिंसा के पालन का संकल्प ही सम्यक् संकल्प है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सम्यक संकल्प का अर्थ है– रागद्वेश, हिंसा तथा सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति के त्याग का दृढ़ निश्चय। यह निर्वाण प्राप्त करने की दिशा का दूसरा मुख्य सोपान है, जिसमें परोपकार तथा त्याग की भावना सन्निहित है।

सम्यक वाक– सम्यक् वाक् का अर्थ है– अनुचित तथा बुरे वचनों का परित्याग कर सम्यक् वचन की संरक्षा। यह सम्यक् संकल्प की अभिव्यक्ति अथवा उसका बाह्य रूप है। बौद्ध धर्म के अनुसार सम्यक् संकल्प को केवल मानसिक स्तर पर ही नहीं छोड़ देना चाहिए बल्कि उसे अपने व्यवहारों में भी ढ़ालना चाहिए। इस संदर्भ में सबसे पहले सम्यक् संकल्प द्वारा हमारे वचनों का नियंत्रण होना चाहिए। अतः बौद्ध धर्म के अनुसार सत्य, मधुर एवं मर्यादित वचनों का प्रयोग ही सम्यक् वाक् है।

सम्यक कर्मान्त– सम्यक कर्मान्त का अर्थ है– गलत तथा बुरे कर्मों का परित्याग। इस संदर्भ में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य का पालन ही मोक्ष–प्राप्ति की दिशा में सहायक है। बौद्ध धर्म के अनुसार यह मोक्ष प्राप्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण सोपान है।

सम्यक आजीविका– हिंसा, द्वेष, कष्ट तथा प्रपंचों से दूर एक न्यायपूर्ण जीविका सम्यक् आजीविका हैं। बुद्ध ने अपने चतुर्थ आर्य–सत्य में बतलाया है कि निर्वाण के साधक को अपनी जीविका के निर्वाह के लिए गलत मार्गों का बहिष्कार तथा उचित मार्गों का अनुसरण ही लक्ष्य–प्राप्ति में सहायक होता है। अपनी मान्यताओं में बुद्ध ने सम्यक् आजीविका को एक अलग सोपान के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि इनके अनुसार जो मानव सम्यक कर्मान्त का पालन करता है वह अपनी जीविका

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

के निर्वाह के लिए कभी भी गलत मार्ग को नहीं चुन सकता। अतः सम्यक कर्मान्त को सार्थक बनाने के लिए सम्यक् आजीविका का पालन अनिवार्य प्रतीत होता है।

सम्यक् व्यायाम– बुराईयों को उत्पन्न होने से रोकने एवं सद्धर्मों की स्थापना के लिए सतत् प्रयत्नशील होना सम्यक् व्यायाम है। बुद्धि के अनुसार वासनाओं को वश में करना सम्यक पुरुषार्थ है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुप्रवृत्तियों को अपने अंदर आने देने से रोकना तथा मानसिक संयम एवं एकाग्रता के द्वारा सुकर्म को सुदृढ़ करना ही इसका मूल लक्ष्य है। इस संदर्भ में इस धर्म के अन्तर्गत पाँच उपायों की चर्चा की गयी है–

- अच्छे विचार का ध्यान
- बुरे विचारों का क्रियात्मक रूप से धारण करने से उत्पन्न–परिणामों का दृढ़तापूर्वक सामना।
- बुरे विचारों से सम्बन्ध–विच्छेद करना।
- बुरे विचारों को उत्पन्न करने वाली प्रेरक–वृत्तियों को नष्ट करना।
- शारीरिक तनाव के बल प्रयोग द्वारा मन को वश में करना।

बौद्ध धर्म के अनुसार सम्यक् व्यायाम 'पुरुषार्थ' के बिना ज्ञान के प्रकाश का उद्भव संभव नहीं है, क्योंकि केवल इसी के बल पर क्रोध, ईर्ष्या, अभिमान तथा विषय से असक्ति का पूरी तरह नाश संभव होता है।

सम्यक स्मृति– चित्त, शरीर, वेदना तथा मानसिक अवस्थाओं को उन्हीं के रूप में स्मरण रखना सम्यक स्मृति है। बौद्ध धर्म के अनुसार मिथ्या भ्रम में पड़कर हम अपने स्वभाव से वशीभूत हो शरीर, चित्त, वेदना तथा मानसिक अवस्थाओं को नित्य एवं सुखकर मान लेने की गलती करते हैं तथा उनके प्रति आसक्त हो उठते हैं। सम्यक् स्मृति के कारण मनुष्य सभी विषयों से विरक्त होकर सांसारिक बंधनों के जंजाल में नहीं फँसता। बौद्ध धर्म के अनुसार सम्यक् स्मृति के मार्ग का पालन निर्वाण के साधक को समाधि के योग्य बना देता है।

सम्यक समाधि– बौद्ध धर्म द्वारा प्रतिपादित अष्टांगिक मार्ग की अन्तिम सीढ़ी सम्यक समाधि है। राग–द्वेष, हिंसा प्रतिकार के त्याग की भावना से हमारे अंदर चित्त की शुद्धि तथा अलौकिक एकाग्रता उत्पन्न होती है। बौद्ध धर्म में इसी एकाग्रता को सम्यक
समाधि की संज्ञा दी गयी है । "सम्यक समाधि" की चार अवस्थाएं बतलायी गयी है। इन चार अवस्थाओं को प्राप्त करने के बाद ही एक साधक निर्वाण को प्राप्त करने में सफल होता है–

प्रथम अवस्था–विचार सागर में डुबकर वैराग्य का अनुभव करते हुए परमशांति को प्राप्त करना समाधि की प्रथम अवस्था है।

द्वितीय अवस्था– विचार एवं तर्कों के जाल के खत्म होने पर आनन्द की अनुभूति होना समाधि की दूसरी अवस्था है।

तृतीय अवस्था– आनंद के प्रति भी उदासीन हो जाना समाधि की तीसरी अवस्था है।

चतुर्थ अवस्था– शारीरिक सुख तथा आनंद–दोनों ही से विरक्त होकर पूर्ण प्रज्ञा की स्थिति को प्राप्त करना समाधि की चौथी अवस्था है। समाधि की यह अन्तिम अवस्था पूर्ण शान्ति, पूर्ण विराग तथा पूर्ण निरोध की अवस्था है। यह सुख–दुःख के भाव से रहित है, इस प्रकार समाधि की इस अवस्था में दुःखों का सर्वथा निरोध होकर पूर्ण शान्ति की प्राप्ति होती है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर साधक को अर्हत की संज्ञा प्राप्त हो जाती है।

बौद्ध धर्म द्वारा प्रतिपादित निर्वाण के इस अष्टांगिक मार्ग के शील, समाधि तथा प्रज्ञा–तीन मूल अंग हैं। इस मार्ग के अनुसरण से निर्वाण को प्राप्त कर लेने के बाद मानव में पूर्ण प्रज्ञा, पूर्णशील, तथा पूर्ण शान्ति का उदय होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय दर्शन की रूपरेखा–डॉ0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास।
2. भारतीय दर्शन– डॉ0 ह्रदय नारायण मिश्र, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. भारतीय दर्शन– डॉ0 शोभा निगम, मोतीलाल बनारसीदास।
4. सामान्य धर्म दर्शन– या0 मसीह, मोतीलाल बनारसीदास।
5. जैन धर्म– पण्डित कैलाशचन्द शास्त्री, भारतीय दिगम्बर जैन, मथुरा।
6. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास – गोविन्द चन्द्र पाण्डे, हिन्दी संस्थान, उ0प्र0।
7. भारतीय दर्शन– बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी।

*****